eISSN:3107-3573
DEV SANSKRITI VISHWAVIDYALAYA PUBLICATION

ORIGINAL RESEARCH ARTICLE

श्रीमद्भागवत महापुराण में नवधा भक्ति की आधुनिक शिक्षा में प्रासंगिकता

भारती दशोरा[1], चारू सनाढ्य[2]

[1]शोधार्थी, शिक्षा संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, भारत
[2]आचार्य, राजस्थान महिला टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, उदयपुर, भारत

सारांश - श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित नवधा भक्ति के सिद्धान्तों को वर्तमान शिक्षा में समाहित करके विद्यार्थियों में एकाग्रता, समर्पण, अनुशासन, भावात्मक बुद्धिमत्ता तथा सकारात्मक दृष्टिकोण जैसे गुणों का विकास किया जा सकता है। इसके साथ ही मानवीय मूल्यों, सामाजिक समरसता और प्रकृति के प्रति सम्मान की भावना भी जागृत की जा सकती है। यह महापुराण बताता है कि भक्ति ही मनुष्य के लिए सर्वोत्तम श्रेयस्कर उपाय है तथा भक्ति को छोड़कर केवल ज्ञान के प्रयत्न से क्लेश ही प्राप्त होता है। नवधा भक्ति में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये नौ प्रकार शामिल हैं। यह शोधपत्र स्पष्ट करता है कि इन प्रत्येक सोपानों को शैक्षिक प्रक्रियाओं के माध्यम से जीवन में उतारा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, श्रवण से सक्रिय श्रवण एवं एकाग्रता, कीर्तन से मौखिक अभिव्यक्ति एवं रचनात्मकता, स्मरण से स्मृति एवं आत्मसात्करण, पादसेवन से सेवा भाव एवं सामाजिक जिम्मेदारी, अर्चन से अनुशासन एवं व्यवस्था, वन्दन से आदर एवं कृतज्ञता, दास्य से कर्त्तव्य निष्ठा, सख्य से सहयोगपूर्ण मित्रता तथा आत्मनिवेदन से पूर्ण समर्पण विकसित किया जा सकता है। इससे छात्रों का समग्र विकास (बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक एवं सामाजिक) संभव होता है तथा आधुनिक शिक्षा में व्याप्त मानसिक तनाव, अशान्ति एवं मूल्यहीनता जैसी चुनौतियों का समाधान भी प्राप्त हो सकता है।

कूटशब्द - भागवत महापुराण, भक्ति, आधुनिक शिक्षा

*CORRESPONDENCE
शिक्षा संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, भारत
Email:
rohitmanama@gmail.com

PUBLISHED BY
Dev Sanskriti Vishwavidyalaya
Gayatrikunj-Shantikunj,
Haridwar, India

OPEN ACCESS
Copyright (c) 2025 Dashora & Sanadya
Licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License

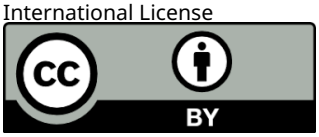

प्रस्तावना

संस्कृति किसी भी राष्ट्र की उत्कृष्टतम विभूति होती है। जिस राष्ट्र की संस्कृति जितनी समृद्ध और उदात्त होती है, वह राष्ट्र उतना ही गौरवशाली बनता है। राष्ट्र की यह विभूति किसी एक युग की सम्पत्ति नहीं होती, इसे हम युग-युग की गाथा कह सकते हैं। इस गाथा का सम्पूर्ण परिचय हमें हमारे प्राचीन ग्रन्थों से मिलता है। इसी क्रम में पुराण साहित्य भी एक है। वेदों के बाद भारतीय परम्परा के अनुसार पुराणों का ही स्थान आता है। इतिहास जहां उस युग की उपलब्धि है, तो पुराण उस युग की आकांक्षा एवं आदर्श हैं। यदि हमें भारत की प्राचीन संस्कृति का अवलोकन करना है, तो इन्हीं ग्रन्थों का अनुशीलन करना होगा।

समस्त पौराणिक साहित्य में श्रीमद्भागवत पुराण का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जीवन जीने की एक अद्भुत शैली को बताते हुए यह महापुराण वैष्णवों का प्रिय है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण का शब्दमय विग्रह है, जो जीवन को संतोष एवं शान्ति प्रदान करने वाला है। कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने वाला यह शास्त्र विद्वानों की योग्यता की कसौटी कहा गया है। 12 स्कन्धों वाले इस महापुराण में 335 अध्याय और 18000 श्लोक हैं। प्रस्तुत लेख में श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित भक्ति की अवधारणा की वर्तमान शिक्षा में प्रासंगिकता को उल्लेखित किया गया है। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार मनुष्य के लिए सर्वोत्तम श्रेयस्कर उपाय भक्ति ही है। भागवत की रचना का कारण भी भक्ति की महिमा को प्रकाशित करना है। जो लोग भक्ति को छोड़कर केवल ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, उनको तो केवल क्लेश ही प्राप्त होता है, जैसे थोथा तूष कूटने वाले को केवल तूष ही प्राप्त होता है।[1]

श्रेयं स्तुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।। (भा0पु0 10/14/4)

अर्थात् भगवन्! आपकी भक्ति सब प्रकार के कल्याण का मूल स्त्रोत है। जो लोग उसे छोड़कर केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए श्रम उठाते हैं और दुख भोगते हैं, उनको बस क्लेश ही हाथ लगता है और कुछ नहीं। जैसे थोथी भूसी कूटने वालों को श्रम मिलता है, चावल नहीं।[2]

ज्ञान यद्यपि मोक्ष की प्राप्ति का एक साधन माना गया है, किन्तु वह भी बिना भक्ति के शोभित नहीं होता। इसी प्रकार के कर्म चाहे निष्काम भाव से ही क्यों न किए गए हों, जब तक भगवान को अर्पित न किए जाएं, तब तक शोभित नहीं होते। भक्ति का लक्षण देते हुए श्रीमद्भागवत महापुराण में कहा गया है कि जिस प्रकार गंगा का प्रवाह निरन्तर समुद्र की ओर रहता है, उसी प्रकार भगवान के गुणों के श्रवण द्वारा मन की गति अविच्छिन्न रूप से भगवान के प्रति हो जाना ही भक्ति योग है।

मधुसूदन सरस्वती ने अपने ग्रन्थ भक्ति रसायन में लिखा है कि भागवत धर्म के द्वारा भगवान के विषय में धारावाहिकता को प्राप्त हुई चित्त की वृत्ति ही भक्ति है। भगवान के प्रति यह चित्त की वृत्ति स्वाभाविक है, जिस प्रकार लौह स्वाभाविक रूप से चुम्बक की ओर आकृष्ट हो जाता है। चित्त तीन गुणों की वृत्ति से निर्मित है। अतः इस प्रकार गुणों के आधार पर तीन प्रकार के भक्त बताए गए हैं।

तामसी भक्त – जो व्यक्ति हृदय में हिंसा, दम्भ, मत्सर या भेद-दृष्टि रखकर भगवान में भक्ति करता है, वह तामसी भक्त कहलाता है।

राजसी भक्त – जो व्यक्ति विषय, यश, ऐश्वर्य आदि की कामना से प्रतिमा आदि में भेद-भाव से भगवान में भक्ति करता है, वह राजसी भक्त कहलाता है।

सात्विक भक्त – जो व्यक्ति कर्मों का परिहार करने के उद्देश्य से या भगवान को अर्पित करने की भावना से 'पूजन करना ही मेरा कर्तव्य है' यह सोचकर अभेद-दृष्टि से भगवान की भक्ति करता है, वह सात्विक भक्त कहलाता है।

भागवत पुराण में भक्ति-तत्त्व का वर्णन अत्यन्त विशद रूप से उपलब्ध होता है। भक्ति ही भागवत का सर्वस्व है। इसमें नवधा भक्ति की बड़ी विशद मीमांसा उपलब्ध होती है। भक्ति मार्ग के अन्तर्गत नवधा भक्ति भागवत पुराण की मौलिक विशिष्टता है।

इसमें भक्ति के नौ प्रकार अभिहित किए गए हैं – श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पदसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।। (भा0पु0 7/5/22)

भक्ति के इन्हीं नौ भेदों को नवधा भक्ति कहा जाता है। नवधा भक्ति को श्रेष्ठ बताते हुए प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकश्यपु को इसका उपदेश दिया। समस्त शास्त्रों और पुराणों में श्रवण भक्ति को प्रथम भक्ति माना गया है। भगवान की लीला-विग्रह की कथा को प्रसन्न मन से सुनना श्रवण भक्ति के अन्तर्गत आता है। हृदयरूपी आकाश या विशाल मन से भगवान के क्रियाकलापों को देखकर उसका गान करना कीर्तन भक्ति कहलाता है। सब कुछ ईश्वर को मानना तथा सर्वदा व्यापकशील, नित्य, सर्वत्र ईश्वर को ही समझकर निर्भय रहना और ईश्वर को अपना मानकर याद करना स्मरण भक्ति है। अरुणोदय से लेकर सेवाकाल तक निर्भय होकर तथा प्रसन्न मन से भगवान का स्मरण करना पादसेवन भक्ति के अन्तर्गत आता है। सेवक बनकर भगवान में अनुकूल भाव रखकर पूजा, पुष्प इत्यादि षोडशोपचार का अर्पण करके भगवान की अर्चना करना अर्चन भक्ति कहलाता है। मन, कर्म एवं वचन से ईश्वर का ध्यान करते हुए गुरु-मन्त्र द्वारा कीर्तन तथा शरीर से दण्डवत् भूमि को प्रणाम करना वन्दन भक्ति कहलाता है। अपनी समस्त इन्द्रियों, मन, बुद्धि एवं चित्त से सदा भगवान में तत्पर रहना दास्य भक्ति कहा जाता है। भगवान द्वारा प्राप्त सुख-दुख एवं अच्छे-बुरे समस्त कर्मों में कल्याण को देखना सख्य भक्ति कहलाता है। अपना सर्वस्व त्याग कर देहादि को भगवान की प्रसन्नता के लिए समर्पण करना एवं अपने जीवन-निर्वाह के लिए कोई भी वस्तु संचित न करना आत्मनिवेदन भक्ति कही जाती है। भक्ति का श्रीमद्भागवत महापुराण में विशद आख्यान है।[1]

श्रवणभक्ति

भगवान का नाम, चरित्र एवं गुणादि का श्रवण ही श्रवण भक्ति है। श्रवण भक्ति की महिमा का वर्णन श्रीमद्भागवत महापुराण में सभी स्कन्धों एवं अध्यायों में उपलब्ध होता है। इसे श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के 29वें अध्याय में श्लोक 38 से 40 में इस प्रकार कहा गया है -

सोऽचिरादेव राजर्षि स्यादच्युतकथाश्रयः।
श्रृण्वतः श्रद्धधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः।।
यत्र भागवता राजन् साधवो विशदाशयाः।
भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः।।
तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र
पीयूषशेषसरितः परितः स्त्रवन्ति।
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णे
स्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः।। (भा0पु0 4/29/38-40)

अर्थात् राजर्षे! यह भक्ति-भाव भगवान की कथाओं के आश्रित रहता है। इसलिए जो श्रद्धापूर्वक उन्हें प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, उसे बहुत शीघ्र ही इसकी प्राप्ति हो जाती है। राजन्! जहाँ भगवद्गुणों को कहने और सुनने में तत्पर विशुद्ध-चित्त भक्तजन रहते हैं, उस साधु समाज में सब ओर महापुरुषों के मुख से निकले हुए श्रीमधुसूदन भगवान के चरित्र-रूप शुद्ध अमृत की अनेकों नदियाँ बहती रहती हैं। जो लोग अतृप्त चित्त से श्रवण में तत्पर होकर अपने कर्ण-कुहरों द्वारा उस अमृत का छककर पान करते हैं, उन्हें भूख-प्यास, भय, शोक और मोह आदि कुछ भी बड़ी बाधा नहीं पहुँचा सकते।[3]

प्रथम स्कन्ध के दूसरे अध्याय के 17वें एवं 18वें श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि श्रीभगवान श्रीकृष्ण के यश का श्रवण और कीर्तन दोनों पवित्र करने वाले हैं। वे अपनी कथा सुनने वालों के हृदय में आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ वासनाओं को नष्ट कर देते हैं, क्योंकि वे संतों के नित्य सुहृद हैं। जब श्रीमद्भागवत अथवा भागवत भक्तों के निरन्तर सेवन से अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब पवित्र कीर्ति भगवान श्रीकृष्ण के प्रति स्थायी प्रेम की प्राप्ति होती है।[1]

एकादश स्कन्ध के छठे अध्याय के 9वें श्लोक में यह बताया गया है कि जिन मनुष्यों की चित्त-वृत्ति राग-द्वेष आदि से कलुषित है, वे वेदाध्ययन, दान, तपस्या और यज्ञ आदि कर्म भले ही करें, परन्तु उनकी वैसी शुद्धि नहीं हो सकती, जैसी श्रवण के द्वारा संतुष्ट शुद्धान्तःकरण सज्जन पुरुषों की आपकी लीला-कथा, कीर्ति के विषय में दिनों-दिन बढ़कर परिपूर्ण होने वाली श्रद्धा से होती है।[1]

भगवान की सेवा के 6 अंग बताए गए हैं। इन 6 अंगों में श्रवण भक्ति का भी वर्णन किया गया है। ये 6 अंग हैं—नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मों का समर्पण, सेवा, पूजा, चरण-कमलों का चिन्तन तथा लीला-कथा श्रवण। इन 6 अंगों के बिना भगवान की भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इन समस्त अंगों को श्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है कि भगवान यज्ञ-स्वरूप हैं। उनके चरण-कमलों का आश्रय लेकर भक्तजन भव-सागर से तर जाते हैं। भगवान के यश-कीर्तन का श्रवण संसार के दुखों से तारने वाला है। भगवान के नाम के श्रवण मात्र से ही जीव का कल्याण हो जाता है।[6]

सद्गुणों से युक्त मनुष्य का तो कल्याण होता है, परन्तु दुर्गुणों से युक्त मनुष्य के भी कल्याण के बारे में बताते हुए कहा गया है कि भूले-भटके, कुत्ते का मांस खाने वाले, चाण्डाल यदि भगवान के गुणों का श्रवण करते हैं, तो वे भी ब्राह्मण के समान पूजनीय हो जाते हैं। मांस इत्यादि का भक्षण करने वाला, हिंसा आदि पाप-कर्म करने वाला, दुर्गुणों से युक्त पुरुष यदि नित्यप्रति भक्ति-भाव से भगवान के पावन चरित्र, यश और आयु को बढ़ाने वाले तथा पाप-पुंज को नष्ट करने वाले गुणों का श्रवण करता है, तो उसके समस्त पापों का नाश हो जाता है।

समस्त प्रकार की बुराइयों का मूल कारण अज्ञान है। कलियुग में मनुष्य के अज्ञान का नाश करने वाला सबसे सुगम मार्ग श्रवण भक्ति को बताया गया है; इससे उनके समस्त अज्ञान का नाश हो जाता है। गुणवान या गुणों से विहीन किसी भी प्रकार का व्यक्ति यदि श्रवण भक्ति का अनुसरण करता है, तो उसका मन निर्मल हो जाता है। मन निर्मल होने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार अपनी विशेषता के कारण श्रवण भक्ति को नवधा भक्ति में प्रथम माना गया है।[6]

आधुनिक जीवन में मानसिक अशान्ति एवं तनाव एक बहुत गम्भीर समस्या है। ऐसी स्थिति में भगवान की कथा को सुनने मात्र से ही चित्त शान्त होता है और सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। यदि छात्रों को केवल सुनने के स्थान पर सक्रिय श्रवण (Active Listening) का अभ्यास करवाया जाए, तो इससे न केवल उनकी एकाग्रता बढ़ती है, बल्कि वे कठिन विषय-वस्तु को आसानी से समझ सकते हैं। शिक्षकों को इसके लिए व्याख्यान, वाद-विवाद और समूह चर्चा के माध्यम से शिक्षण कार्य कराना चाहिए, जिससे बालकों की आलोचनात्मक क्षमता विकसित हो सके।

कीर्तनभक्ति

नवधा भक्ति के अन्तर्गत कीर्तन का द्वितीय स्थान है। भगवान के नाम, लीला एवं गुण इत्यादि का उच्चारण ही कीर्तन है। जन्म-मरण से युक्त इस घोर कलियुग को प्राप्त मनुष्य मात्र भगवान का नाम लेने से शीघ्र मुक्त हो जाता है। भगवान के यश का गान करने से कलियुग में जितना भी पाप-रूपी मल है, वह दूर हो जाता है। श्रीमद्भागवत महापुराण में भगवान के नाम का कीर्तन कई प्रसंगों में विस्तारपूर्वक किया गया है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार भगवान के नाम के वक्ता तथा श्रोता दोनों पवित्रता को प्राप्त करते हैं। यह नाम-सङ्कीर्तन किसी भी प्रकार, किसी भी समय और किसी भी परिस्थिति में किए जाने पर भी पापों को दूर करने वाला होता है। हमारे ऋषि-महर्षियों द्वारा पापों को दूर करने के लिए प्रायश्चित्त विधान बताए गए हैं। इन विधानों को करने पर पाप तो नष्ट हो जाते हैं, पर मन की मलीनता नहीं जाती, जबकि श्रीभगवान का नाम-सङ्कीर्तन से हृदय निर्मल हो जाता है। ज्ञान से या अज्ञान से भगवान का नाम स्मरण करने पर समस्त पापों का प्रभाव समाप्त हो जाता है, जिस प्रकार अज्ञानवश अमृत का पान करने पर भी अमरत्व की ही प्राप्ति होती है, उसी प्रकार अज्ञानता से भी भगवान का नाम लेने पर उत्तम फल की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत महापुराण में अजामिल उपाख्यान इसी का उत्तम उदाहरण है।[1]

कीर्तन की महत्ता का वर्णन करते हुए नारद कहते हैं कि महात्माओं द्वारा कीर्तन किए गए रहस्यमय नाम का उपदेश सुनकर मेरे तमोगुण तथा रजोगुण का नाश हो गया था। शरद और वर्षा ऋतुओं में महात्मागण श्रीहरि के सुयश का कीर्तन किया करते थे। नारद महात्माओं के उपदेश को ग्रहण करके भगवान के नाम का कीर्तन करते हुए पृथ्वी पर सर्वत्र स्वतन्त्र विचरण करते थे। कीर्तन भक्ति का आश्रय लेकर ही नारद ने मुनि का पद प्राप्त किया।

श्रीमद्भागवत महापुराण में गृहस्थ, सन्यासी, योगी—समस्त जनों के लिए कीर्तन भक्ति को महत्वपूर्ण बताया गया है। जो लोक और परलोक में किसी भी वस्तु की कामना करते हैं, जो सांसारिक विषय-भोगों से मुक्ति चाहते हैं। सिद्ध ज्ञानियों के लिए भी समस्त शास्त्रों का निर्देश दिया गया है कि भगवान के नाम का प्रेमपूर्वक कीर्तन करना चाहिए। जो भक्त भगवान के चरित्र एवं नाम को बार-बार स्मरण करके कीर्तन करते हैं, वे भगवान के चरण-कमलों का दर्शन पाकर जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। अतः कीर्तन भक्ति की महत्ता को ऐसे भी समझा जा सकता है कि यदि कोई मनुष्य कीर्तन संकेत में, परिहास में, तान अलापने में या किसी की अवहेलना करने या गिरते समय पैर फिसलते समय—चाहे किसी भी प्रकार से विवशता-वश भगवान के नाम का उच्चारण करता है, तो भी उसके समस्त पाप और दुख नष्ट हो जाते हैं। भगवान की पूजा, मन्त्रों के अनुष्ठान करने की विधि, देश-काल और सामग्री में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ हो सकती हैं, परन्तु यह सभी त्रुटियाँ भगवान के नाम-कीर्तन से दूर हो जाती हैं। अजामिल ऐसा ही भक्त था जिसने कीर्तन भक्ति का आश्रय लिया; अजामिल ने भगवान के नारायण नाम का मात्र एक बार ही कीर्तन किया, जिससे उसे मोक्ष-पद की प्राप्ति हो गई थी।[1]

मनुष्य स्वाभाविक रूप से सांसारिक विषय-भोगों को भोगने में सुख का अनुभव करता है और विषय-भोगों के भोगने एवं उनमें आसक्ति बढ़ने से मनुष्य के दुख निरन्तर बढ़ते जाते हैं। उन विषय-भोगों को प्राप्त करने में मनुष्य के द्वारा अनेक प्रकार के पाप-कर्म हो जाते हैं। परन्तु कोई भी मनुष्य दुखी नहीं रहना चाहता; सभी मनुष्य सुख

की कामना करते हैं। अतः इन शाश्वत सुखों की प्राप्ति भगवान का आश्रय लेने से ही मिल सकती है। भगवान की भक्ति के कई साधन बताए गए हैं, परन्तु समस्त शास्त्रों एवं पुराणों में कीर्तन भक्ति को एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। इसीलिए श्रीमद्भागवत महापुराण में नवधा भक्ति के अन्तर्गत कीर्तन भक्ति को दूसरी भक्ति के रूप में स्थान दिया गया।[6]

आधुनिक सन्दर्भ में देखा जाए तो कीर्तन से तात्पर्य केवल भजन गाने से ही नहीं, बल्कि विचारों, ज्ञान, भावनाओं और अपने अनुभवों को व्यक्त करने से भी है। इसके लिए छात्रों को मौखिक अभिव्यक्ति, रचनात्मक लेखन, कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाना चाहिए। इससे छात्रों का आत्मविश्वास भी बढ़ता है तथा उनकी सम्प्रेषण क्षमता भी उन्नत होती है। अतः बालक के भीतर की रचनात्मकता को बढ़ावा देकर नवधा भक्ति के द्वितीय प्रकार कीर्तन को पूर्ण किया जा सकता है।

स्मरणभक्ति

जिस किसी भी प्रकार से हो, मन का भगवान के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाना ही स्मरण कहलाता है और इस सम्बन्ध को प्रगाढ़ता भगवान के नाम-श्रवण व कीर्तन से प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के दूसरे अध्याय के 15वें श्लोक के अनुसार -

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्।
छिन्दति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम।। (भा0पु0 1/2/15)

अर्थात् कर्मों की गाँठ बड़ी कड़ी है। विचारवान पुरुष भगवान के चिन्तन की तलवार से उस गाँठ को काट डालता है। तब भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जो भगवान की लीला-कथा से प्रेम न करे। इसलिए एकाग्र मन से भक्त-वत्सल भगवान का नित्य स्मरण करना चाहिए। भगवान की प्रतिपल नित्य स्मृति समस्त अमंगल को दूर करने वाली है।[4]

स्मरण शक्ति को मनुष्य अकेले में अपने अन्तर्मन के किसी भी क्षण, किसी भी अवस्था में कर सकता है। श्रीमद्भागवत महापुराण में स्मरण भक्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जो लोग संसार में अज्ञान से ग्रसित होकर कर्म-बन्धनों में फँसे रहने के कारण पीड़ित रहते हैं, उनके दुखों को दूर करने का एकमात्र साधन स्मरण भक्ति है। सम्पूर्ण सृष्टि में ग्रह, नक्षत्र और तारों के रूप में भगवान का आधिदैविक स्वरूप प्रकाशित हो रहा है; जो भगवान के इस आधिदैविक स्वरूप का प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल स्मरण करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। स्मरण भक्ति को करना मनुष्यों का धर्म भी कहा गया है। स्मरण भक्ति के द्वारा ही ब्रज की गोपियों ने वह मोक्ष-पद प्राप्त कर लिया जो बड़े-बड़े योगियों के लिए दुर्लभ होता है। इसलिए स्मरण भक्ति को भी श्रेष्ठ भक्ति में सम्मिलित किया गया है।[1]

आधुनिक शिक्षा में स्मरण का अर्थ स्मृति या पुनरावृत्ति से लिया जा सकता है; इसमें ज्ञान को प्राप्त करना तथा उसका आत्मसात्करण करना भी सम्मिलित है। श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित स्मरण भक्ति के अनुसार यदि छात्र सीखी हुई बातों को दोहराता है, महत्वपूर्ण बिन्दुओं को लिखकर याद रखने का प्रयत्न करता है तथा इन्हें अपने दैनिक जीवन का हिस्सा बनाता है, तो वह किसी भी अवधारणा को रटने के स्थान पर उसे समझने का ज्यादा प्रयास करेगा। इससे छात्र की स्मरण शक्ति बढ़ेगी, साथ ही उन्हें परीक्षाओं में अच्छा प्रदर्शन करने में मदद मिलेगी। वर्तमान में शिक्षा व्यवस्था जो एक ओर जहाँ रटने पर बल दिया जाता है, वहीं श्रीमद्भागवत महापुराण समझने, दोहराने एवं याद रखने पर बल देता है।

पादसेवनभक्ति

श्रवण और कीर्तन भक्ति तक भक्त दुराचारी भी रह सकता है। परन्तु स्मरण भक्ति का उदय होने के पश्चात् वह दुराचारी नहीं रह सकता। उसका हृदय शुद्ध हो जाता है। उसके मन में सेवा-भाव जागृत होने लगता है। इसी सेवा-भाव को पादसेवन भक्ति कहा जाता है। भक्तों के लिए साक्षात् भगवान के चरण-कमलों की प्राप्ति अतिदुर्लभ है। इसलिए यह चरण-सेवा गुरु अथवा प्रतिमा की सेवा करके की जाती है। भगवान के अंश-रूप में जो भी चरण-सेवा करने योग्य है, उनके चरणों की सेवा साक्षात् भगवान समझकर की जा सकती है।

श्रीमद्भागवत महापुराण की पादसेवन भक्ति में भगवान के चरण-कमल की सेवा करने से चित्त के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। भगवान का ध्यान करते समय सबसे पहले चरणों का ध्यान करना चाहिए। चरणों के ध्यान करने से बुद्धि शुद्ध हो जाती है और चित्त स्थिर हो जाता है। पादसेवन भक्ति की महत्ता प्रदर्शित करते हुए अन्यत्र भी कहा गया है कि जो भक्त भगवान के चरण-कमल से एक क्षण भी विमुख नहीं होता, वही श्रेष्ठ भक्त कहलाता है। ऐसे भक्त को यदि भगवान त्रिभुवन की राजलक्ष्मी भी दे रहे हों, तो भी वह उसका त्याग कर देते हैं। पादसेवन भक्ति में स्वयं लक्ष्मी भी विष्णु के चरणों की सेवा के लिए तत्पर रहती है; अतः पादसेवन भक्ति का महत्त्व अत्यधिक माना गया है। भगवान के चरण-कमल की सेवा से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। अत्रि की कोई सन्तान नहीं थी; वे निरन्तर भक्ति में लीन रहते थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान स्वयं को अत्रि को सौंप देते हैं और पुत्र-रूप में उत्पन्न होते हैं, जो दत्तात्रेय नाम से प्रसिद्ध हुए।[1]

पादसेवन भक्ति में इतनी शक्ति है कि इस भक्ति के माध्यम से भक्त को भगवान के साक्षात् दर्शन हो जाते हैं, जैसे प्रह्लाद को हुए थे। इसी प्रकार मृत्यु के निकट आने पर राजा परीक्षित अपना सर्वस्व त्यागकर ब्राह्मणों से प्रार्थना करते हैं कि मुझे कर्म-वश जो भी योनि में जन्म लेना पड़े, परन्तु भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में अनुराग बना रहे। उनके चरणों के आश्रित रहने वाले महात्माओं से प्रेम हो जाए। आप मुझे ऐसा आशीर्वाद प्रदान कर दीजिए। इस प्रकार लोक-परलोक के समस्त भोगों को त्यागकर भगवान श्रीकृष्ण के चरण-कमलों की सेवा करते हुए परीक्षित आमरण अनशन का व्रत लेकर गंगा-तट पर बैठ जाते हैं।[1]

भक्ति एवं आराधना करने से मन एकाग्र होता है और गुरु की प्रतिमा में भगवान का भाव मन में रखकर उनकी चरण-सेवा करते हुए मनुष्य भक्ति का अनुसरण करता है और मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार की भक्ति से भगवान के साक्षात् दर्शन होते हैं; इसीलिए पादसेवन भक्ति को श्रेष्ठ भक्ति माना गया है।

पादसेवन भक्ति को सेवा-भाव एवं सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में समझा जा सकता है। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार पादसेवन का अर्थ गुरुजनों, बड़ों और समाज के प्रति सेवा-भाव रखने से है। इस भक्ति में बालकों को सामुदायिक सेवा, समाज एवं विद्यालय के नियमों का पालन करना, शिक्षकों का सम्मान करना, सहपाठियों की मदद करना आदि के लिए प्रेरित किया जा सकता है। वर्तमान शिक्षा एवं समाज में इस प्रकार के गुणों को विकसित किया जाना बहुत आवश्यक हो गया है। छात्रों को एक अच्छा नागरिक बनाने के दृष्टिकोण से उनमें विनम्रता, परोपकार, सहयोग, सहानुभूति, सहकारिता जैसे गुणों का विकास किया जाना आवश्यक है।[6]

अर्चनभक्ति

अर्चन का अर्थ होता है पूजन। पूजन अर्चन शब्द अर्च से बना हुआ

है। बाह्य सामग्री के द्वारा सेवक बनकर भगवान के प्रति अनुकूल भाव रखकर पूजा करना तथा पुष्प इत्यादि षोडशोपचार का अर्पण करके भगवान की पूजा करना अर्चना भक्ति कहलाती है। अतः विविध उपचारों से भगवान की पूजा करना ही अर्चन है। श्रीमद्भागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध के 27वें अध्याय के सातवें श्लोक के अनुसार -

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति में त्रिविधों मखः।
त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत।। (भा0पु0 11/27/7)

अर्थात् स्वयं श्रीकृष्ण भगवान कह रहे हैं कि मेरी पूजा की तीन विधियाँ हैं—वैदिक, तांत्रिक और मिश्रित। इन तीनों में से मेरे भक्त को जो भी अनुकूल जान पड़े, वह उस विधि से मेरी आराधना करें। वैदिक एवं तांत्रिक पूजा में विशेष ज्ञान एवं कौशल की आवश्यकता रहती है, परन्तु ऐसी स्थिति में मिश्रित पूजा करना श्रेष्ठ कहा गया है।[5]

श्रीकृष्ण भगवान ने इसका एकादश स्कन्ध के 27वें अध्याय के 15वें श्लोक में स्पष्ट मार्गदर्शन प्रदान कर लिया है कि—प्रसिद्ध से प्रसिद्ध प्रतिमा आदि में मेरी पूजा की जाती है, परन्तु जो निष्काम भक्त है, वह अनायास प्राप्त पदार्थ से और भावना मात्र से ही हृदय में मेरी पूजा कर ले।[1]

श्रीभगवान यह भी कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति मानसिक अर्चन का अधिकारी नहीं है और न ही प्रत्येक को इसमें सफलता ही मिलती है। इसलिए श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार जब तक व्यक्ति को यह ज्ञान न हो जाए कि भगवान उसके हृदय में स्थित है और वही सब चराचर जगत में विद्यमान है, तब तक उस व्यक्ति को अपने कर्मों को करते हुए प्रतिमा आदि का पूजन करते रहना चाहिए। इसे भौतिक पूजा कहते हैं। पवित्र जल, वनमाला, फल, फूल, दूर्वा और तुलसी से भगवान की पूजा करे।[1]

श्रीमद्भागवत महापुराण में अर्चन नामक भक्ति करने की विधि विस्तारपूर्वक बताई गई है। पहले गुरु की सेवा करके गुरु से दीक्षा लेनी चाहिए। गुरु से अनुष्ठान की विधि सीखनी चाहिए। भगवान की जो मूर्ति प्रिय लगे, उसी रूप में भगवान की पूजन करनी चाहिए। मूर्ति को पूजा-योग्य बनाकर आसन पर मन्त्र-उच्चार करके जल छिड़ककर, पाद्य, अर्घ्य इत्यादि पात्रों को स्थापित करने के पश्चात् एकाग्रचित्त होकर मूर्ति में ही भगवान का स्वरूप मानकर ध्यान करना चाहिए। अपने उपास्य देवता को मूलमन्त्र द्वारा पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, दधि, अक्षत के तिलक, माला, धूप-दीप और नैवेद्य इत्यादि से विधिवत् पूजित करना चाहिए। इस विधि से जो पुरुष भगवान की भक्ति करता है, वह शीघ्र मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

मूर्ति के द्वारा भगवान की पूजा करने से भक्त को पृथ्वी पर एकछत्र राज्य प्राप्त हो जाता है। सकाम पूजा करने से भगवान में समानता का भाव बना रहता है। इसके विपरीत यदि मनुष्य निष्काम भाव से पूजा करता है, तो उसे भगवान की भक्ति प्राप्त हो जाती है।[1]

अर्चन भक्ति का महत्त्व बताते हुए आगे कहा गया है कि नित्य-नैमित्तिक नियमों को पूरा करके एकाग्रचित्त से मूर्ति, वेदी, सूर्य, जल, अग्नि और गुरुदेव के रूप में भगवान विष्णु की पूजा करनी चाहिए। पाषाणादि प्रतीकों में भगवान का पूजन करना चाहिए। भगवान की अर्चना करने से भक्त का हृदय आनन्दित हो जाता है। गृहस्थियों के लिए अर्चन भक्ति का महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि द्विजाति ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहस्थ के लिए यही कल्याणकारी है कि सन्मार्ग से प्राप्त हुए द्रव्य द्वारा श्रद्धापूर्वक भगवान का अर्चन करे।

भगवान समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले हैं। जो मनुष्य भगवान का पूजन अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप-दीप, नैवेद्य इत्यादि के द्वारा करता है, उसकी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अपनी महत्ता एवं सरलता के कारण अर्चन भक्ति महत्वपूर्ण भक्ति मानी गई है। जब भक्त के मन में भगवान के प्रति प्रेम का उदय हो जाता है, तब भक्त मूर्ति या प्रतिमा में भगवान के प्रति आदर एवं सम्मान का भाव रखता है। वह भगवान की धूप-दीप, नैवेद्य इत्यादि से पूजा-अर्चना करता है, जिससे उसकी भक्ति निरन्तर बढ़ती जाती है। सकाम भाव से अर्चन भक्ति करने पर सांसारिक भोगों की प्राप्ति होती है और निष्काम भाव से भक्ति करने पर मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए भक्ति के रूप अर्चन भक्ति का विशेष महत्त्व माना गया है।[6]

अर्चन भक्ति को विधिवत् पूजा कहते हैं, अर्थात् इस प्रकार पूजा करना अनुशासन एवं व्यवस्था को दर्शाता है। श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित अर्चन भक्ति की भावना को शिक्षा में पूरी तरह समायोजित किया जा सकता है। यह शिक्षा में समय-सारणी का पालन करने, स्वच्छता बनाए रखने, अपने सीखने के वातावरण को व्यवस्थित रखने के रूप में अभ्यास में लाया जा सकता है। इससे बालकों का शैक्षिक प्रक्रिया के प्रति समर्पण-भाव बढ़ता है और अनुशासन, समय-प्रबन्धन जैसी आदतों का विकास होता है।[7]

वन्दन भक्ति

भागवत पुराण में नमस्कार अर्थ में वन्दन भक्ति प्राप्त होती है। वन्दन भक्ति की विधि बताते हुए कहा गया है कि दण्ड की भाँति पृथ्वी पर लेटकर भगवान को प्रणाम करना चाहिए। सिर को भगवान के चरण-कमलों में रखकर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करनी चाहिए। भगवान की प्रार्थना करते हुए कहें कि आप शरणागत-रक्षक हैं। आपके चरण-कमल सदा ध्यान करने योग्य हैं। माया-मोह का नाश, अभीष्ट वस्तु दान करने वाले हैं। आप परम तीर्थ-स्वरूप हैं। शिव, ब्रह्मा, देवता भी आपको नमस्कार करते हैं, आपको हम भी नमस्कार करते हैं। वन्दना करने वाले पुरुष इस संसार-रूपी सागर से मुक्त हो जाते हैं। धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते हुए तथा अपने कर्मों को भोगते हुए जो मनुष्य शरीर, वाणी और मन से भगवान को वन्दन करते हुए जीवन-यापन करते हैं, वे मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। यदि मनुष्य अत्यधिक दुख एवं संकट में बस जाने पर वन्दन भक्ति का आश्रय लेता है, तो उसको मुक्ति प्राप्त हो जाती है। भक्त गजेन्द्र का पैर ग्राह ने पकड़ लिया था और गजेन्द्र के प्राण संकट में थे, तो उसने विष्णु भगवान को वन्दन करते हुए प्रार्थना की। गजेन्द्र की प्रार्थना और पुकार को सुनकर भगवान ने उसे मुक्ति प्रदान की। वन्दन भक्ति के विशेष महत्त्व को बताते हुए देवहूति कहती हैं कि भगवान के नामों का श्रवण-कीर्तन करना चाहिए। यदि कोई भूलवश भी भगवान को वन्दन करता है, तो भगवान उसे प्रसन्न होकर पवित्र कर देते हैं। देवहूति पुनः भगवान कपिलदेव को प्रणाम करते हुए कहती हैं कि आप अपने तेज से माया से भ्रमित लोगों को ज्ञान देने वाले हैं। आपके अन्दर ही सम्पूर्ण वेद-तत्त्व निहित है। ऐसे साक्षात् विष्णु-स्वरूप को मैं प्रणाम करती हूँ। तपस्वी, योगी, ऋषि-मुनि भी भगवान की वन्दना किया करते हैं। कर्दम मुनि ने बड़ी कठिन तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने उन्हें दर्शन दिए। कर्दम मुनि ने भगवान की वन्दना करते हुए कहा—प्रभु! आप स्वरूप से निष्क्रिय होने पर भी माया के द्वारा सम्पूर्ण संसार का व्यवहार चलाने वाले हैं। थोड़ी सी उपासना करने वालों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण कर देने वाले हो, आपके चरण-कमल वन्दनीय हैं, मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। वन्दन भक्ति की विशेषता बताते हुए शुकदेव कहते हैं—उन पुण्यकीर्ति भगवान को बार-बार

नमस्कार करना चाहिए, जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन समस्त पापों को क्षणभर में नष्ट कर देता है। कहा गया है कि भगवान के चरण-कमल में सर्वदा प्रणाम करते रहने से हम अपना कल्याण कर पाते हैं।

अपनी महत्ता के कारण वन्दन भक्ति का बहुत अधिक महत्त्व है। वन्दन भक्ति करने से मनुष्य के लोभ, माया इत्यादि दुर्गुणों का नाश हो जाता है। भक्ति गुरु प्रतिमा के चरण स्पर्श करते हुए कहीं भी किसी भी प्रकार की की जा सकती है। वन्दन भक्ति करने से मनुष्य मुक्ति भी प्राप्त कर लेते हैं। राम और लक्ष्मण भी वन्दन भक्ति करते हैं।[1]

वन्दन का अर्थ आधुनिक शिक्षा में गुरु, माता, पिता या ज्ञान प्रदान करने वालों के प्रति आदर-भाव रखने से है। विद्यालयों में छात्रों को कृतज्ञता का व्यवहार निश्चित रूप से सिखाया जाना चाहिए, जिससे स्वार्थपरकता एवं केवल स्वयं के कल्याण की भावना समाप्त होती है। इससे समाज एवं विद्यालय का वातावरण सकारात्मक बनता है। श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित वन्दन भक्ति छात्रों में विनम्रता एवं कृतज्ञता विकसित करने की प्रेरणा देती है।[7]

दास्य भक्ति

पूर्ण रूप से अपने आप को भगवान को अर्पित कर देना ही दास्य है। यह भक्ति का वह प्रकार है जहाँ भक्त के हृदय में किसी भी प्रकार की कामना नहीं रहती है। उसके और उसके प्रभु के बीच सेवक एवं दास का सम्बन्ध बन जाता है और प्रभु का सेवक बनकर रहना एक अनोखी खुशी और आत्मिक शान्ति की अनुभूति करने वाला होता है। दास्य भक्ति में सेवा की भावना सर्वोपरि रहती है। जहाँ वणिक की भाँति नफा-नुकसान नहीं सोचा जाता है। दास्य भक्ति में निस्वार्थ भाव होना आवश्यक है। प्रह्लाद कहते हैं कि भगवान की सेवा जो लोग स्वार्थ के लिए करते हैं, उनमें दास्य भाव नहीं होता है। वह सेवक भी नहीं होता, वह तो लेन-देन करने वाले वैश्य के समान होता है। भगवान श्रीकृष्ण उद्धव जी को दास्य भक्ति का उपदेश देते हुए कहते हैं कि जो मेरी कथा सुनने में श्रद्धा रखता हो तथा निरन्तर मेरा ध्यान करता रहता हो, जो कुछ भी प्राप्त होने पर उसे मुझे समर्पित कर देता हो, दास्य भाव से मेरी सेवा करता हो, वही श्रेष्ठ दास्य भक्ति है।

दास्य भक्ति का नवधा भक्ति में विशेष महत्त्व है। इसमें भक्त स्वयं को भगवान के अधीन समझता है और अपने समस्त सुख-दुख भगवान को समर्पित कर देता है और सेवक के भाँति रहते हुए स्वयं मुक्ति प्राप्त करता है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार दास्य भक्ति का अर्थ स्वयं को दास मान सेवा करना है। आधुनिक शिक्षा के सन्दर्भ में इसे अपनी जिम्मेदारियों को पूरी निष्ठा से निभाना कहा जा सकता है। जीवन के सभी क्षेत्रों में जो भी कार्य करने को दिए जाएँ—जैसे गृहकार्य करना, विद्यालय, अपने साथियों और अन्य लोगों के प्रति अपने कर्तव्यों को ईमानदारी से पूरा करने के लिए प्रेरणा दी जानी चाहिए। श्रीमद्भागवत की दास्य भक्ति व्यक्ति को कर्तव्यपरायणता एवं समर्पण-भाव रखने की प्रेरणा प्रदान करती है।[1]

सख्य भक्ति

सख्य शब्द का अर्थ मित्रता या सौहार्द से है। मनुष्य मन में जब यह भाव रखता है कि भगवान अच्छा-बुरा जो भी करते हैं, वह कल्याण के लिए है, इसे ही सख्य भक्ति कहा जा सकता है। यह सखा-भाव, मैत्री-भाव भगवान की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। सख्य भक्ति राम अवतार में कपिराज सुग्रीव और विभीषण तथा श्रीकृष्ण अवतार में ब्रज की गोप-गोपिकाओं, उद्धव और अर्जुन को प्राप्त हुई थी। सख्य भक्ति प्राप्त भक्त भगवान के प्रति अनन्य श्रद्धा और पूज्य भाव रखते हुए भगवान के साथ मित्र-भाव रखते हैं। जो मनुष्य सख्य भक्ति का अनुसरण करता है, उसके समस्त दुख दूर हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में सख्य भक्ति का वर्णन मित्रता और सौहार्द भाव से ही दिखाई देता है। अर्जुन अपने सखा भगवान श्रीकृष्ण से दूर जाने पर उनकी याद में अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं। श्रीकृष्ण के दूर चले जाने के बाद अर्जुन कृष्ण के साथ बिताए गए समय को याद करके रोते हैं। वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण की वाणी हृदय-स्पर्शी थी। वे मुझे पार्थ, अर्जुन, सखा, कुरुनन्दन इत्यादि कहकर पुकारते थे। मुझे अब उनकी यह बातें याद आती हैं, तब मेरा हृदय व्याकुल हो जाता है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण में सख्य भक्ति के कई उदाहरण मिलते हैं। गोप और गोपिकाओं, श्रीकृष्ण भगवान के बीच सखा-भाव ही प्रमुख है। जो भक्त अनन्य भाव से भगवान की शरण को प्राप्त कर लेता है, भगवान भी उसके अधीन हो जाते हैं। बृजवासी, गोकुल की गायें सभी भगवान के शरणागत हो गए और स्वयं श्रीकृष्ण ने भी उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। वे समस्त बृजवासी बहुत भाग्यशाली हैं कि तीनों लोकों के स्वामी स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूप परमब्रह्म उनके सखा हैं।[1]

श्रीमद्भागवत महापुराण की नवधा भक्ति में सख्य भाव का अर्थ मित्रता से लिया जाता है। वर्तमान शिक्षा में मित्रता का भाव बहुत ही महत्त्व रखता है। विद्यार्थियों का अपने सहपाठियों के साथ सहयोग, समूह में कार्य करना, एक-दूसरे की मदद करते हुए स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के माध्यम से कार्य करने की प्रेरणा इस भक्ति से मिलती है। वर्तमान में ऐसा करने पर छात्रों में सामाजिक कौशलों का विकास होता है और स्वस्थ सामाजिक रिश्ते बनते हैं।[7]

आत्मनिवेदन भक्ति

सभी प्रकार के अहंकारों को त्यागकर अपने आप को सरल भाव से प्रेमपूर्वक प्रभु को अर्पण कर देना ही आत्मनिवेदन है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत आत्मनिवेदन भक्त की चरम स्थिति को दर्शाता है। इस स्थिति को प्राप्त करने वाला भक्त अपने बाह्य भौतिक स्वरूप में नहीं रहता, वह अपने प्रभु के साथ एकाकार हो जाता है। श्रीमद्भागवत महापुराण में आत्मनिवेदन भक्ति का महत्त्व एवं विशेषता बताते हुए कहा गया है कि जो मनुष्य आत्मनिवेदन भक्ति करते हैं, वे अनन्य भक्त होते हैं। ऐसे भक्तों को भगवान की भक्ति प्राप्ति होती है तो उनके लिए कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता है। जो भक्त स्त्री, पुत्र, घर, कुटुम्ब, धन, लोक, परलोक—समस्त त्यागकर भगवान के चरण में चले जाते हैं, ऐसे शरणागत की भगवान स्वयं रक्षा करते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार भगवान श्रीऋषभदेव, ध्रुव ने आत्मनिवेदन भक्ति की थी।

श्रीमद्भागवत महापुराण में पूर्ण समर्पण को आत्मनिवेदन कहा गया है। आधुनिक शिक्षा में यह भक्ति का प्रकार पूर्णतः प्रासंगिक है। सीखने की प्रक्रिया में प्रति छात्र का पूर्ण समर्पण उसको कठिन-से-कठिन कार्यों में सफल बना देता है। अपनी समस्त क्षमताओं को पहचानकर आत्म-जागरूकता के माध्यम लक्ष्य प्राप्ति करना आत्म-निवेदन भक्ति है।[1]

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित नौ प्रकार की भक्ति व्यक्ति के आत्मकल्याण के साथ-साथ प्रेम, करुणा और सरलता का पाठ पढ़ाती है। यह महापुराण यह सिखाती है कि जब हम दूसरों में ईश्वर के स्वरूप का दर्शन करते हैं, तो इसमें भेदभाव की भावना में कमी आती है। यह हमें जीवन के वास्तविक उद्देश्यों को पूर्ण करने में मदद करती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली जो केवल बौद्धिक विकास पर केन्द्रित है, में नवधा भक्ति के सिद्धान्तों को अपनाकर छात्रों के

चरित्र निर्माण, नैतिक विकास और मानसिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है। इन सिद्धान्तों को वर्तमान शिक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर छात्रों के समग्र विकास में वर्णित नवधा भक्ति का योगदान लिया जाना चाहिए।

आधुनिक शिक्षा में प्रासंगिकता

वर्तमान समय में शिक्षा सूचनाओं का आदान-प्रदान मात्र रह गई है। इसमें व्यावसायिक कौशल पर ध्यान देना तथा छात्रों के समग्र विकास हेतु नैतिक मूल्यों का विकास अत्यावश्यक हो गया है। श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित नवधा भक्ति केवल आध्यात्मिक विषयवस्तु नहीं है, वरन् जीवन जीने की एक कला है। इसके माध्यम से व्यक्ति आन्तरिक शक्ति, नैतिक बल एवं सामाजिक जीवन के उद्देश्यों को सीखता है, जिससे वह आधुनिक युग की चुनौतियों का सामना करने के साथ भौतिकवाद एवं आध्यात्म में सन्तुलन स्थापित करना सीखता है। इसी दृष्टि से श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णित नवधा भक्ति आधुनिक शिक्षा में प्रासंगिक है।

Acknowledgements: There is no acknowledgement.
Compliance: Not required.
Conflict of Interest: None.

संदर्भ

[1] श्रीमद्भागवत महापुराण. गोरखपुर: गीता प्रेस; वि.सं. 2076.

[2] श्रीमद्भागवत महापुराण. खण्ड 2. गोरखपुर: गीता प्रेस; वि.सं. 2076. स्कन्ध 10, श्लोक 14/4.

[3] श्रीमद्भागवत महापुराण. खण्ड 1. गोरखपुर: गीता प्रेस; वि.सं. 2076. स्कन्ध 4, श्लोक 29/38-40.

[4] श्रीमद्भागवत महापुराण. खण्ड 1. गोरखपुर: गीता प्रेस; वि.सं. 2076. स्कन्ध 1, श्लोक 2/15.

[5] श्रीमद्भागवत महापुराण. खण्ड 2. गोरखपुर: गीता प्रेस; वि.सं. 2076. स्कन्ध 11, श्लोक 27/7.

[6] भोज पुष्पा. श्रीमद्भागवत महापुराण में नवधा भक्ति [पीएचडी शोधप्रबन्ध]. शोधगंगा.

[7] पाठक देवनारायण, सिंह महिमा. श्रीमद्भागवत महापुराण में नवधा भक्ति का स्वरूप. ज्ञानशौर्यम इंटरनेशनल साइन्टिफिक रेफर्ड रिसर्च जर्नल. 2023;6(6):66-9. ISSN: 2582-0095.